पूज्य ललचंदभाई के प्रवचन
प्रवचन नंबर: ३३९
प्रवचनसार गाथा-६ भावार्थ तथा गाथा १४
नीलांबर એપાર્ટમેંટ, मुंबई

Version 1

श्री समयसार जी परमागम शास्त्र है। इसका प्रथम जीव नाम का अधिकार, छठ्ठी गाथा का भावार्थ। छठ्ठी गाथा पूरे समयसार शास्त्र का सार है।

भावार्थ:- अशुद्धता अर्थात् मलिनता **परद्रव्य के संयोग से आती है।** परन्तु परद्रव्य के संयोग से, उसके निमित्त से, नैमित्तिक जो परिणाम होते हैं, उन परिणामो में अशुद्धता आती है वह अशुद्धता द्रव्य तक पहुंच नहीं सकती। अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से आती है, उत्पन्न होती है। **उसमें मूल द्रव्य तो अन्य द्रव्यरूप नहीं होता,** पर्याय में शुभाशुभ भाव कर्म के संयोग के निमित्त से होते हैं तो भी मूल जो स्वभाव, आत्मद्रव्य, ज्ञायकभाव, वह तो अन्य द्रव्यरूप अर्थात् अशुद्धतारूप होता ही नहीं है। वह तो तीनों काल शुद्ध रहता है।

मात्र परद्रव्य के निमित्त से, सिर्फ परद्रव्य के निमित्त से**अवस्था मलिन हो जाती है।** अवस्था मलिन होती है किन्तु शुद्धात्मा मलिन नहीं होता। क्योंकि नैमित्तिक भाव की मर्यादा पर्याय तक होती है। नैमित्तिकभाव स्वभाव तक नहीं पहुँचता। निमित्त का तो प्रवेश ही नहीं है। निमित्त तो बहिर्तत्त्व है, अत्यंत भिन्न है। उस जड़ कर्म का प्रवेश तो द्रव्य स्वभाव में नहीं है, પણ એના લક્ષે થતાં શુભાશુભ ભાવો જે છે, परन्तु उसके लक्ष से होनेवाले शुभाशुभभाव जो हैं, वे नैमित्तिकभाव, वे स्वभाव में प्रवेश नहीं कर सकते। नैमित्तिक की मर्यादा पर्यायधर्म तक है।

द्रव्यदृष्टि से तो द्रव्य जो है वही है तीव्र मिथ्यात्व अवस्था, मलिनता हो तब भी द्रव्यस्वभाव बेहद शुद्ध है। वह नैमित्तिक मलिनता, द्रव्यस्वभाव में प्रवेश नहीं कर सकती। क्योंकि द्रव्य में पर्याय की नास्ति है ऐसी द्रव्य की अस्ति है।

द्रव्यदृष्टि से अर्थात् द्रव्यस्वभाव से देखने में आये **तो द्रव्य जो है वही है और पर्याय** अर्थात् **(अवस्था)-दृष्टि से देखा जाये तो मलिन ही दिखाई देता है।** परिणाम मलिन दिखता है। **इसीप्रकार आत्मा का स्वभाव ज्ञायकत्वमात्र है,** आहाहा! मलिनता पर्याय की है और आत्मा तो स्वभाव से ही ज्ञायक अनादि अनंत है। वह ज्ञायकभाव मिटकर जड़भावरूप नहीं होता। परिणाम में जड़पना अनादिकाल से.., जड़ के संबंध से जड़भाव प्रकट होता है। शुभाशुभभाव जड़ हैं। तो भी आत्मा का स्वभाव चैतन्य सामान्य, सामान्य, शुद्ध, ज्ञायक, ज्ञायक ऐसा ही रहता है।

और उसकी अवस्था. इसीप्रकार आत्मा का स्वभाव ज्ञायकत्वमात्र है, और उसकी अवस्था, वह स्वयं नहीं। **उसकी अवस्था** अर्थात् पराश्रित अवस्था, **पुद्गलकर्म के निमित्त से रागादिरूप मलिन है वह पर्याय है।** द्रव्य स्वभाव तो ज्ञायक है, शुद्ध है। वह तो भावकर्म से तीनों काल भिन्न है। भावकर्म का उसमें प्रवेश नहीं होता। परन्तु परद्रव्य के लक्ष से पर्याय में मलिनता प्रकट होती है (तो) वह तो पर्याय है। **पर्याय-दृष्टि से देखा जाये तो वह मलिन ही दिखाई देता है** आहाहा!

परिणाम की तरफ से देखा जाये तो वह मलिनता परिणाम में दिखाई देती है। **और द्रव्यदृष्टि से देखा जाये तो ज्ञायकत्व तो ज्ञायकत्व ही है;**

आत्मा एक है उसके पहलू दो हैं। एक द्रव्य सामान्य पहलू और एक विशेष पर्याय का, परिणाम का, अवस्था का, हालत का पहलू। परिणाम पर के संग से मलिन होता है। किन्तु आत्मा पर का संग नहीं करता इसलिये मलिन नहीं होता। और परिणाम स्वयं का संग छोड़कर पर का संग करने जाता है, तो एक समय मात्र का नैमित्तिक शुभाशुभभाव प्रकट होता है। वह पर्याय मलिन है।

किन्तु द्रव्यदृष्टि से देखने में आये तो द्रव्य, दूसरा पहलू ऐसा का ऐसा, परमात्मा है वह तो। उसमें अधूरापन नहीं आता और ना ही उसमें विपरीतता लागू पड़ती है। द्रव्यदृष्टि को प्रधान करके। **द्रव्यदृष्टि से देखा जाये तो ज्ञायकत्व तो ज्ञायकत्व ही है;** जानना, जानना, जानना, जानना जिसमें स्वभाव है, **यह कहीं जड़त्व नहीं हुआ।** जड़ अर्थात् रागरूप आत्मा नहीं होता। पर्याय में राग है उस वक्त राग से आत्मा अनन्य नहीं है बल्कि राग से आत्मा अन्य है। इसलिए वह आत्मा शुभाशुभ भावरूप नहीं होता, अतः जड़रूप नहीं होता। वह मूल आत्मा। आत्मा एक और उसके पहलू दो। यह जैनदर्शन के अलावा और कहीं है नहीं। **यहाँ द्रव्यदृष्टि को प्रधान करके कहा है। 'यहाँ'** अर्थात् इस समयसार शास्त्र में और इस छठ्ठी गाथा में। **द्रव्यदृष्टि को** अर्थात् त्रिकाली सामान्य एकरूप जो स्वभावभाव आत्मा है, ऐसा जो द्रव्यस्वभाव, उसकी **दृष्टि को प्रधान करके**, मुख्य करके कहने में आया है कि ज्ञायक तो ज्ञायक है।

जो प्रमत्त-अप्रमत्त के भेद हैं अर्थात् असावधान दशा प्रमत्त, और सावधान दशा अप्रमत्त। अशुद्धता और शुद्धता, ऐसे पर्याय के दो प्रकार के जो भेद हैं, भेद अर्थात् प्रकार हैं, **वे परद्रव्य के संयोगजनित पर्याय हैं।** क्या कहा? यहाँ मार्मिक बात करते हैं कि पुण्य-पाप-आस्रव-बंध ऐसे विकारी परिणाम तो **परद्रव्य के संयोगजनित पर्याय हैं।** किन्तु पुण्य-पाप-आस्रव-बंध, उनका एकदेश अभाव होकर संवर-निर्जरा होती है, और सर्वथा अभाव होकर परिपूर्ण मोक्ष अवस्था होती है, वह अवस्था भी परद्रव्य के संयोगजनित पर्याय है। एक में सद्भाव निमित्त है और एक में अभाव निमित्त है। अर्थात् निमित्त सापेक्ष परिणाम है और भगवान आत्मा निमित्त निरपेक्ष है। तो **परद्रव्य के संयोगजनित** ये प्रमत्त-अप्रमत्त दशाओं के भेद जो प्रकट होते हैं वे कर्मकृत हैं, वे जीवकृत नहीं हैं। प्रमत्त की अवस्था जीव नहीं करता और अप्रमत्त का कर्ता आत्मा नहीं है, क्योंकि (आत्मा) निष्क्रिय और अकर्ता है।

वह ज्ञायक है उसमें करना नहीं होता, ज्ञायक में जानना होता है। उस जाननहार को जानते जानते यह जानने में आ गया कि ये अप्रमत्त-अप्रमत्त दशाएं सभी पुद्गल की अवस्थायें हैं, वे कर्मकृत हैं। उनका करनेवाला पुद्गल है, मैं करनेवाला नहीं हूँ। आहाहा! अशुद्ध पर्याय और शुद्ध पर्याय, वे दोनों पुद्गल द्रव्य के संयोगजनित पर्याय हैं, ऐसा कब जाना जा सकता है? कि ज्ञायक जाननहार को अंतर-सन्मुख होकर जैसे ही जाना, और उसमें नज़र रखकर यहाँ देखा , तो वे पुद्गलद्रव्य के सद्भाव और अभाव से उत्पन्न होनेवाले द्रव्य हैं।

मुझसे ये भेद उत्पन्न नहीं होते। उत्पाद का उत्पादक मैं नहीं हूँ। उस उत्पाद का उत्पादक पर्याय है और निमित्तरूप से परद्रव्य है। मैं तो उसका उत्पादक उपादान के तौर पर भी नहीं हूँ और

निमित्त के तौर पर भी मैं नहीं हूँ। परद्रव्य के संयोगजनित अवस्थायें हैं, आहाहा! यह परमार्थ प्रतिक्रमण में इन सब भेदों को कहा कि उन सबका मैं कर्ता नहीं, कारयिता नहीं, कारण नहीं और अनुमोदक नहीं हूँ। पुद्गलद्रव्य इन विभावभावों को, भेदों को करता है परन्तु मैं तो उसे अनुमोदन देता नहीं हूँ। वह बात यहाँ पर की है।

जो प्रमत्त-अप्रमत्त के भेद हैं वे इस प्रकार से आत्मा को उसने एक समय भी देखा नहीं है। पर्याय से सहित (आत्मा) देखने पर पर्याय का स्वामी लगता है। पर्याय रहित देखने पर द्रव्य का स्वामी हो जाता है। स्व-स्वामी संबंध पर्याय के साथ हुआ है अनंत काल से अज्ञान में, वह पर्याय को ही देखता है और द्रव्य को देखता नहीं है। अब, पर्याय से रहित मैं हूँ वहाँ द्रव्यदृष्टि होकर अनुभव होता है। पर्याय, पर्याय में रह जाती है और नई पर्याय द्रव्य को प्रसिद्ध करती है। **जो प्रमत्त-अप्रमत्त के भेद हैं वे परद्रव्य के संयोगजनित पर्याय हैं।** संवर, निर्जरा और मोक्ष परद्रव्य के संयोगजनित अवस्था हैं, अभाव उनमें निमित्त होता है। मैं तो प्रथम से ही हूँ, आहाहा! मैं संवर, निर्जरा और मोक्ष का उत्पादक नहीं हूँ। **यह अशुद्धता** लो! प्रमत्त और अप्रमत्त दोनों अशुद्धनय के विषय हैं। **यह अशुद्धता** प्रमत्त और अप्रमत्त की अशुद्धता, आहाहा!

मुमुक्षु:- प्रमत्त और अप्रमत्त की अशुद्धता, स्वयं की अशुद्धता।

उत्तर:- उसकी अशुद्धता, आहाहा! त्रिकाल शुद्धता द्रव्य की है और क्षणिक शुद्धता और अशुद्धता, आहाहा! वे सभी पुद्गलद्रव्य के संयोगजनित पर्याय हैं। इसलिये अशुद्धनय का विषय हैं। **यह अशुद्धता द्रव्यदृष्टि में गौण है,** प्रमत्त और अप्रमत्त ये दो भेद, उनकी जो अशुद्धता, आहाहा! ऐसे द्रव्य शुद्ध है और यह भेद अशुद्धनय का विषय है। शुद्ध पर्याय भी अशुद्धनय का विषय है। शुद्धात्मा शुद्धनय का विषय है।

मुमुक्षु:- बहुत अच्छा। सामान्य शुद्धम!

उत्तर:- **सामान्य शुद्धम विशेष अशुद्धम,** आहाहा! **अशुद्धता,** प्रमत्त-अप्रमत्त की **अशुद्धता द्रव्यदृष्टि में गौण है,** आहाहा! जहाँ इसप्रकार द्रव्यदृष्टि की अभेद, तो अभेद में भेद दिखता नहीं है। वह गौण हो जाता है। उसका लक्ष छूट जाता है। गौण यानि लक्ष छूट जाता है। त्रिकाली का लक्ष होता है। **वह अशुद्धता व्यवहार है,** प्रमत्त-अप्रमत्त की दो दशाएं, वह निश्चय नहीं है अपितु (व्यवहार है), क्योंकि भेद है इसलिये व्यवहार है। दूसरा, पराश्रित है इसलिये व्यवहार है। आस्रव-बंध तो पराश्रित है परन्तु संवर, निर्जरा और मोक्ष भी पराश्रित है, पर की अपेक्षा आये ऐसा पराश्रित है ।

मुमुक्षु:- वाह-वाह! पर की अपेक्षा आये ऐसा पराश्रित।

उत्तर:- ऐसा पराश्रित भाव है। यहाँ तो त्रिकाली सामान्य शुद्धात्मा बताना है, आहाहा! कहीं कोने कोने में भी यदि संवर, निर्जरा और मोक्ष की अधिकता आ गई तो द्रव्यदृष्टि नहीं होगी। आहाहा!

मुमुक्षु:- समुद्र की शांत अवस्था पवन के आश्रित है। पवन के अभाव के आश्रित है।

उत्तर:- बस। हाँ! पवन का बहना और न बहना, वे दो उसमें निमित्त हैं। अतः निमित्त से निरपेक्ष, नैमित्तिक से भी निरपेक्ष, ऐसा स्वभावभाव एकरूप है। आहाहा! वह शुद्धनय का विषय है। वह उपादेय है। वह आश्रय करने योग्य है। उसमें अहं करने योग्य है। कर्मजनित भावों को गौण करके

व्यवहार कहकर और अभूतार्थ और असत्यार्थ हैं (कहा)। वे कोई आत्मा (नहीं हैं), प्रमत्त और अप्रमत्त अभूतार्थ हैं यानि आत्मा के स्वभाव में उनका न होना। और असत्यार्थ - वह कोई सत्य आत्मा असल में नहीं है। वे तो स्वांग हैं प्रमत्त-अप्रमत्त की दशाएं। उनका तो अभाव होता है। सिद्ध अवस्था में उनका अभाव होता है। आहाहा!

मुमुक्षु:- क्षणिक अशुद्धता अशुद्धनय का विषय है और क्षणिक शुद्धता भी अशुद्धनय का विषय है।

उत्तर:- हाँ ! अशुद्धनय का विषय है, क्यों? कारण क्या? कि परद्रव्य के संयोगजनित अवस्थायें हैं वे। और आत्मा के आश्रय से होती हैं ऐसा लो, तो वे भेद, अभेद आत्मारूप होते हैं। यह तो भेद से देखो तो वह कर्मजनित है, अभेद से देखो तो आत्मा है। संवर, निर्जरा और मोक्ष, भेद से देखो तो कर्मकृत हैं। अभेद से देखो तो, संवर, निर्जरा और मोक्ष के भेद दिखाई नहीं देते, वे तो आत्मा हैं।

मुमुक्षु:- संवर- निर्जरा को दो पहलू से लिया।

उत्तर:- हाँ! आहाहा! संवर-निर्जरा ! जहाँ भेद का विचार आया, वहाँ वह कर्म सापेक्ष भाव हो गया।

मुमुक्षु:- संवर-निर्जरा- जहाँ भेद का विचार आया वहाँ कर्म सापेक्ष हो गया। अभेद हुआ, तो वह ही आत्मा है।

उत्तर:- हाँ, अभेद आत्मा है। फिर किसे कहना संवर और किसे कहना निर्जरा? वह तो आत्मा है, वह ज्ञेय अभेद हो गया। अभेद ज्ञेय। **अभूतार्थ (है), असत्यार्थ है,** लक्ष करने योग्य नहीं है परिणाम, **उपचार है** वे सभी प्रमत्त और अप्रमत्त के भेद जीव के भाव हैं, यह उपचार का कथन है, वास्तविक कथन नहीं है। आहाहा! जीव उससे भिन्न है। प्रमत्त-अप्रमत्त दशा से भिन्न ज्ञायकभाव। एक (को) दृष्टि में लेने से निर्विकल्प आत्मा का सहज अनुभव होता है। ६दृष्टि में लेने योग्य तो आत्मा है। दृष्टि में लेने योग्य परिणाम नहीं है। **उपचार है।**

अब आगे, **द्रव्यदृष्टि शुद्ध है,** द्रव्य तो शुद्ध है किन्तु द्रव्य की दृष्टि हुई वह शुद्ध है।

मुमुक्षु:- अब अभेद।

उत्तर:- अभेद। पर्याय का भेद नहीं, आहाहा! **द्रव्यदृष्टि शुद्ध है,** अर्थात् कि दृष्टि का विषय तो शुद्ध है परन्तु उस दृष्टि के विषय को दृष्टि में लिया तो वह दृष्टि अभेद है इसलिये शुद्ध है। यदि भेद हो तो कर्मजनित है। **द्रव्यदृष्टि शुद्ध है,** जैसे आत्मा शुद्ध है वैसे दृष्टि और दृष्टि का विषय, अभेद करो तो शुद्ध है, भेद करो तो अशुद्ध है। यह विषय गुरुदेव ने भी इसीप्रकार से लिया है, खास मार्क करके मैंने पढ़ा था। वह अठारहवीं बार के उनके व्याख्यान है ना, उसमें छप गया है। उसमें इस बोल में द्रव्यदृष्टि शुद्ध है क्योंकि द्रव्य शुद्ध है वह तो आ गई है बात, परन्तु द्रव्य की दृष्टि हुई वह भी शुद्ध है। वह शुद्ध है, अगर अभेद से देखो तो शुद्ध है। पर्याय और द्रव्य को भिन्न देखो (तो अशुद्ध है)। तो दृष्टि कहाँ शुद्ध रही? वह अभेदपने शुद्ध है। त्रिकाल अभेद और क्षणिक अभेदपने वह शुद्ध है।

मुमुक्षु:- ध्येयपूर्वक ज्ञेय है वह शुद्ध है।

उत्तर:- शुद्ध ही है। ध्येय तो शुद्ध है।

मुमुक्षुः- ज्ञेय भी शुद्ध है।

उत्तरः- परन्तु ज्ञेय भी शुद्ध है। ध्येय में गुणभेद दिखाई नहीं देता और ज्ञेय में पर्यायों का भेद दिखाई नहीं देता।

मुमुक्षुः- एकदम सही! ध्येय में गुणभेद दिखाई नहीं देता।

उत्तरः- और ज्ञेय में पर्यायभेद दिखाई नहीं देता। भेद है किन्तु दिखता नहीं है। क्या शब्द है?

मुमुक्षुः- **भेद दिखाई देता नहीं है।**

उत्तरः- **भेद दिखाई देता नहीं है।**

मुमुक्षुः- भेद है किन्तु भेद दिखाई देता नहीं है।

उत्तरः- (भेद दिखाई) देता नहीं है। उसका नाम निर्विकल्प ध्यान है। ये निर्विकल्प ध्यान में स्थिति होती है। सविकल्प में आकर ज्ञानी इसी तरह दूसरों को समझाते हैं। **द्रव्यदृष्टि शुद्ध है,** दूसरा शब्द है **अभेद है,** आया ना? **अभेद है** वह। द्रव्य की जो दृष्टि हुई वह दृष्टि द्रव्य से अभेद है। इसका नाम अभेद ज्ञेय कहने में आता है। पुराना अभेद और नया अभेद। आहाहा! है, अभेद शब्द है इसमें। यह त्रिकाल अभेद की बात नहीं है, क्षणिक अभेद।

मुमुक्षुः- द्रव्यदृष्टि की बात है।

उत्तरः- द्रव्यदृष्टि हुई, वह दृष्टि द्रव्य में भिन्न है कि अभिन्न? अभिन्न। सम्यग्दर्शन भिन्न है कि अभिन्न? अभिन्न। सम्यग्दर्शन आत्मा है, सम्यग्ज्ञान आत्मा है, इसप्रकार पर्याय शब्द लिखा नहीं है।

मुमुक्षुः- अभेद है।

उत्तरः- अभेद है अर्थात् आत्मा है , आहाहा! भेद से देखो तो पर्याय है। अब यदि, भेद से यदि पर्याय है, तो अनुभव नहीं होता उसमें। यह एक ऐसी डेलिकेट (नाजुक) बात है, डेलिकेट है। कि एक बार पर्याय से भिन्न आत्मा को कहा और फिर पर्याय से द्रव्य अभिन्न होता है। ये क्या? ये क्या चमत्कारिक बात है? यह चमत्कार है। आहाहा! यह बात हिम्मतनगर में की थी। जवाहर(भाई) के साथ बात हुई रात को। (उन्होंने कहा) भाई! परन्तु यदि पर्याय अभेद हो जाये तो-तो दृष्टि का विषय ढीला पड़ जाये। 'ઢોળો' अर्थात् ढीला पड़ जाये। ढीला हो जाये। मैने कहा: नहीं, दृष्टि का विषय सम्यक् हो जाता है, अभेद होता है तब।

मुमुक्षुः- बिलकुल ठीक। सच्चा हो जाता है।

उत्तरः- आहाहा! यह एक बात।

मुमुक्षुः- सम्यक हो जाता है ऐसा कहते हैं, अधिक दृढ़ हो जाता है - ऐसा नहीं कहते।

उत्तरः- सम्यक हो जाता है। आहाहा! यह बात तुम लक्ष में रखना। अनुभव होगा तब तुम्हें काम आयेगी। अभी डिपॉजिट (deposit) रखना। न बैठे(समझ में) तो मस्तिष्क में रखना। आहाहा! वही बात करते हैं। इसका नाम स्याद्वाद है। कथंचित् शुद्धपर्याय भिन्न, और कथंचित् अभिन्न। इस प्रमाण में जब आओ न, ज्ञानप्रधान कथन, तब शुद्धपर्याय कथंचित् भिन्न-अभिन्न आता है। परन्तु दृष्टि अपेक्षा से तो शुद्ध पर्याय परद्रव्य है। दृष्टि अपेक्षा से तो सर्वथा भिन्न है।

मुमुक्षुः- तभी तो द्रव्य दृष्टि में आता है।

उत्तरः- आता है। और सर्वथा भिन्न के बाद कथंचित् भिन्न-अभिन्न अनुभव के काल में हो जाता है।

मुमुक्षुः- सर्वथा भिन्न के बाद कथंचित् अभिन्न।

उत्तरः- अभिन्न, भिन्न-अभिन्न अनुभव के काल में होता है। आहाहा! तब दो नय का ज्ञाता हो गया वह। है सूक्ष्म थोड़ा! समझ गये? और सूक्ष्म ही होता है।

मुमुक्षुः- अच्छा लगे ऐसा है।

उत्तरः- अरूपी तत्त्व है यह।

मुमुक्षुः- द्रव्यदृष्टि शुद्ध है, अभेद है ये अच्छा खुलासा आया।

उत्तरः- हाँ! और यह खुलासा गुरुदेव ने किया है अपने व्याख्यान में। **द्रव्यदृष्टि शुद्ध है, अभेद है, निश्चय है,** निश्चय अर्थात् पर्याय से अभेद हुआ वह निश्चय है। और **भूतार्थ है**, ये बात सच्ची है। यह अभेद होता है वह बात सच्ची है। और **सत्यार्थ है,** वह बात सच्ची है और **परमार्थ है।** आहाहा! यह अकेले त्रिकाली द्रव्य के पक्ष में रहा हुआ जीव मध्यस्थ नहीं होता है इसलिए यह समझ में नहीं आता है। पर्याय के प्रति द्वेष और द्रव्य का राग रह जाता है, अनंतानुबंधी का।

मुमुक्षुः- अनंतानुबंधी का रह जाता है।

उत्तरः- अनंतानुबंधी का पर्याय का द्वेष करता ही रहता है। आहाहा! द्रव्य में पर्याय का आभाव, पर्याय का अभाव। द्रव्य में पर्याय है ही नहीं। आहाहा! परन्तु पर्याय आत्मा होकर अनुभव होता है तब पर्याय का भेद नहीं रहने से, वह आत्मा हो जाता है, यह दूसरा पहलू रह गया।

यह बात पंकज ! तुम्हारे बापूजी के साथ सोनगढ़ में हुई थी। **द्रव्य-दृष्टि प्रकाश** पढ़कर द्रव्य का पक्ष एकदम मजबूत कर लिया, संध्या। द्रव्य का पक्ष एकदम मजबूत क्योंकि वह तो सम्पूर्ण **द्रव्य-दृष्टि प्रकाश** उसका नाम ही है। क्योंकि द्रव्यदृष्टि की प्रधानता से पूरी उनकी बात थी। समझ गये? तब कहा कि आपने जो बात विचार की है वह तो ठीक ही है। उसमें कुछ बदलाव करने की जरूरत नहीं है। पर दूध उबला हुआ है और जरा-सा उसमें जामन डालोगे तो दही होगी और घी निकलेगा। वह क्या? मैंने कहा पर्याय जब यह द्रव्यस्वभाव है, ऐसा स्वीकारेगी, तब पर्याय आत्मा होगी, सहित हो जायेगी। नहीं, नहीं, नहीं, ऐसा नहीं होता, रहित ही होता है। जरा विचार करना।

मुमुक्षुः- ज्ञान का द्रोह हो गया।

मुमुक्षुः- ये ही शब्द प्रयुक्त किया था। ज्ञान का द्रोह होता है।

उत्तरः- ज्ञान का द्रोह होगा।

मुमुक्षुः- भाई! वो पुराने घर में। नये घर पर नहीं, पुराने घर पर, दोपहर में। मैं था उस वक्त।

उत्तरः- था?

मुमुक्षुः- हाँ! मैं था ना पुराने घर पर, आपने कितना कहा, पर क्रोध होता ही नहीं है ना मेरे में। मेरे में कहाँ क्रोध होता है? अरे बापू ! सुनो तो जरा। यह ज्ञान का द्रोह होता है। यह ज्ञान का द्रोह आपने बोला ना तब मुझे शब्द याद आये कि आप ठीक यही बोले थे कि ज्ञान का द्रोह हो जाता है।

उत्तरः- आहाहा! परन्तु पर्याय जो उपयोग लक्षण है, वह उपयोग आत्मा से अभिन्न, अनन्य

होकर अनुभव करता है। वह द्रव्य और पर्याय भिन्न रहें, आहाहा! तो शुद्धोपयोग नहीं कहलाता। शुद्धोपयोग कब कहलाता है? कि शुद्ध से अनन्य हुआ तब शुद्धोपयोग हुआ। तब तक उपयोग था।

मुमुक्षुः- शुद्धोपयोग कब कहलाता है कि जब शुद्ध से अनन्य हुआ तब शुद्धोपयोग कहलाता है।

उत्तरः- तब वह अभेद हो जाता है।

मुमुक्षुः- तब तक वह उपयोग कहलाता है।

उत्तरः- उपयोग कहलाता है, ठीक है। उपयोग तो आत्मा से भिन्न है, किन्तु शुद्धोपयोग कथंचित् अभिन्न है। उपयोग तो आत्मा से भिन्न है किन्तु शुद्धोपयोग तो कथंचित् आत्मा से अभिन्न है, अनुभव के काल में।

मुमुक्षुः- उपयोग तो आत्मा से भिन्न है। किन्तु शुद्धोपयोग कथंचित् अभिन्न है।

उत्तरः- किन्तु शुद्धोपयोग कथंचित् अभिन्न है। और आगम पद्धति से देखें तो वह उपयोग लक्षण भी आत्मा से अनन्य है। किन्तु अभी तो यहाँ शुद्धोपयोग होता है वह अभेद होता है, द्रव्यदृष्टि शुद्ध है, उसकी बात है।

मुमुक्षुः- ज्ञेय की बात चलती है।

उत्तरः- यहाँ ज्ञेय की बात चलती है। यह दूसरा पहलू है। अभी दिनेश भाई का फोन आया था ना, तब मैंने जल्दी हाँ कह दिया, रविवार के लिये। समझ गये? एक बार वहाँ सामान्य और विशेष के दो पहलू की बात की थी। इसलिये कहा कि इस बार जरा सामान्य-विशेष दो पहलू हैं। आहाहा! यह अभी चलता है छठ्ठी गाथा के दो पहलू, इसलिये फिर कहा ठीक है।

मुमुक्षुः- व्याख्यान में ये लोगे?

उत्तरः- व्याख्यान में...नहीं, सामान्य-विशेष के ऊपर लूँगा। अब क्या विषय लेना वह बाद में देखेंगे उस समय। तुम तो यहाँ नहीं हो ना उस समय? हो, चौदह तारीख को, ठीक। आहाहा! क्या कहा? आहाहा! क्या कहा? आहाहा! पक्ष में आने के बाद पंकज! ज्ञान मध्यस्थ होता जाता है। मध्यस्थ होते ही पक्ष विलीन होने लगता है। इस ओर द्रव्य के पक्ष से राग था और पर्याय मेरे में नहीं है उसका निषेधात्मक द्वेष था। वो यहाँ राग घटता है, वहाँ द्वेष घटता है। राग घटते-घटते और द्वेष घटते-घटते दोनों का अभाव एक समय में होकर, अनुभव होता है। तब वह ज्ञान मध्यस्थ हुआ, अनुभव हुआ, ऐसा कहने में आता है। तब तक तो पक्ष है। आहाहा! पक्षातिक्रांत होता है तब द्रव्यदृष्टि शुद्ध है। द्रव्य दृष्टि शुद्ध हुई तब! अभेद हुई तब!

मुमुक्षुः-दो नयों का ज्ञाता हुआ तब।

उत्तरः- हाँ ! ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय की अभेदता है। ज्ञान भिन्न और ज्ञायक भिन्न, है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु- द्रव्य शुद्ध है और द्रव्यदृष्टि शुद्ध है इसमें रहस्य है।

उत्तरः- रहस्य है। अभेद है। अभेद हो गया, आहाहा! फिर वापस अभेद शब्द प्रयुक्त किया। अभेद प्रयुक्त किया।

मुमुक्षुः- हम तो समझे (कि) आप बोल रहे हो, अभी इसमें (समयसार में) देखा तब इसमें लिखा

हुआ है, अभेद।

उत्तरः- इसमें लिखा हुआ है। मैं इसका ही अर्थ करता हूँ।

मुमुक्षुः- भगवान का साक्षात्कार होगा, उसीका ही नाम है वह।

उत्तरः- हाँ! भगवान का साक्षात्कार हुआ तब भगवान हो जाता है, पर्याय नहीं रहती। आहाहा! उसका नाम संवर नहीं रहता, वह तो आत्मा हो गया। आता है कि अनुभूति कहो, शुद्धनय कहो या आत्मा कहो। देखो, चौदहवीं गाथा निकालो ना। यहाँ ही है हाजिर। लो!

ज्ञानी लिखते-लिखते विषय बदल देते हैं। तुम्हारे मस्तिष्क में वो चलता होवे और यह विषय बदलकर तुम्हें ज्ञान कराया, यहाँ तुम्हारी नजर नहीं पड़ी। तुम तो अनुभूति तो पर्याय है, अनुभूति तो पर्याय है, आत्मा कहाँ है? फिर ख्याल में नहीं आयेगा। शास्त्र स्वाध्याय में भी बहुत रहस्य होता है। विषय झट से बदल देते हैं। दृष्टि के विषय से बात करते-करते ज्ञान के विषय में आ जाते हैं। उसमें नहीं कहते कि ज्ञान का विषय है, देखो!

निश्चय से चौदहवीं गाथा की टीकाः- **निश्चय से अबद्ध-अस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष और असंयुक्त - ऐसे आत्मा की जो अनुभूति** , है तो आत्मा की अनुभूति, राग की अनुभूति नहीं है। **आत्मा की जो अनुभूति सो शुद्धनय है, और वह अनुभूति (आत्मा ही है);** अरे! पर्याय है या आत्मा?

मुमुक्षुः- आत्मा ही है।

उत्तरः- पर्याय है तो अनुभूति नहीं है और आत्मा है तो अनुभूति है। पर्याय का भेद दिखाई नहीं देता। भेद दिखाई देता नहीं है।

मुमुक्षुः- उसका नाम अनुभूति है।

उत्तरः- उसका नाम अनुभूति **और वह अनुभूति आत्मा ही**! आहाहा! क्या कहा?

मुमुक्षुः- आत्मा ही है।

उत्तरः-अब पूरा दृष्टि का विषय चौदहवी गाथा में दिया। और उसके साथ ज्ञान मिला दिया।

मुमुक्षुः- तब ही भाई! पूरा होता है।

उत्तरः- दृष्टि का विषय दिया। प्योर (pure) दृष्टि का विषय।

मुमुक्षुः- भाई! और अनुभूति आत्मा ही है तो ज्ञान मिला दिया।

उत्तरः- ज्ञान मिला दिया, वो आत्मा हो गया, सही अब। ये दृष्टि का विषय सच्चा हुआ।

मुमुक्षुः- उसका नाम ही द्रव्यदृष्टि है।

उत्तरः- नहीं तो द्रव्यदृष्टि के विषय से मोहक्षपण का कारण होता है परन्तु मोह क्षय होता नहीं है। अनुभूति के काल में मोह क्षय हो जाता है। तब अनुभूति पर्याय दिखाई नहीं देती है किन्तु आत्मा दिखाई देता है। आहाहा!

मुमुक्षुः- इसप्रकार ही आत्मा एक प्रकाशमान होता है।

मुमुक्षुः- निश्चयनय के पक्ष में मोहक्षपण का कार्य तो होता है परन्तु क्षय होता नहीं है।

उत्तरः- और **इसप्रकार आत्मा एक ही प्रकाशमान है**, लो? आहाहा! यह आत्मा और (यह)

अनुभूति- ऐसा द्विविधपना दिखता नहीं है। वह **प्रकाशमान** हुआ आत्मा, लो, प्रगट हुआ। दृष्टि के विषय की बात करते-करते ज्ञान को साथ में ले लिया। केवलज्ञान की पर्याय परद्रव्य और अनुभव हुआ वो स्वद्रव्य। श्रुतज्ञान वो स्वद्रव्य, अभेद की विविक्षा से। भेद की अपेक्षा से केवलज्ञान परद्रव्य, श्रुतज्ञान अभेद होता है तो आत्मा हो गया। यह क्या है? यह क्या बात करते हैं? कि केवलज्ञान की पर्याय को भेद से देखोगे तो कर्मकृत है और श्रुतज्ञान को अंतरसन्मुख होकर आत्मा है ऐसा जानोगे तो, वह आत्मा है। अनुभूति वह आत्मा ही है। है ना? इसमें लिखा हुआ है ना?

मुमुक्षुः- भेद का कितना निषेध है!

उत्तरः- भेद का निषेध करते-करते अभेद होती है तो स्वागत कर लिया, आ-आ पर्याय आ। आहाहा! तू मेरे में नहीं है, मेरे में नहीं है, मेरे में नहीं है ऐसा करता था परन्तु तेरे सहारे बिना मुझे प्रसिद्ध कौन करेगा? और तू प्रसिद्ध करेगी तो तो तू आत्मा हो जायेगी। तू मुझे प्रसिद्ध कर तो आत्मा हो जायेगी। तुझे आत्मा होना हो- पर्याय को द्रव्य कहता है तुझे आत्मा होना हो न तो मुझे अभेद होकर प्रसिद्ध कर ले। तो तेरा नाम पर्याय नहीं रहेगा बल्कि तेरा नाम आत्मा हो जायेगा।

मुमुक्षुः-परन्तु बड़े आदमी की पहचान में बड़े होते हैं कि नहीं?

उत्तरः- बड़े होते हैं। होते हैं! यह तो कोई अद्‌भुत चमत्कारिक बात, गुरु भी स्वयं और शिष्य भी स्वयं। देखो! **द्रव्यदृष्टि शुद्ध है , अभेद है,** ये **निश्चय है**। व्यवहार नहीं है। **भूतार्थ है, सत्यार्थ है, परमार्थ है। इसलिये आत्मा ज्ञायक ही है; उसमें भेद नहीं है इसलिये वह प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं है।** भेद से देखो तो प्रमत्त-अप्रमत्त है। अभेद से देखो तो वह आत्मा है।

अब, (भावार्थ का) पहला पैराग्राफ पूरा हुआ। (टीका के) पहले पैराग्राफ का स्पष्टीकरण भावार्थ में पूरा हुआ, छट्ठी का पहला पैरा। अब छट्ठी गाथा के (टीका के) दूसरे पैरे की बात आती है।

ऊपर था ना, **और दाह्य के आकार होने से,** उस दूसरे पैराग्राफ का स्पष्टीकरण करते हैं। **'ज्ञायक' ऐसा नाम भी उसे** यानि आत्मा को, **ज्ञेय को जानने से दिया जाता है।** अर्थात् ज्ञेय ज्ञान में जानने में आते हैं, जैसे लकड़ी है, अग्नि लकड़ी को जलाती है तो उसे अग्नि कहा जाता है। जो अग्नि को जानता नहीं था उसे 'लकड़ी को जलाये वह अग्नि' - भली भाँति उसे ख्याल आता है। आहाहा! ऐसे आत्मा को ज्ञायक क्यों कहा? कि ज्ञेय जानने में आते हैं, ज्ञेय को जानता है इसलिये आत्मा को ज्ञायक, आहाहा! जानने से, आहाहा! **ज्ञेय को जानने से** दिया जाता है**ज्ञायक का नाम। कारण देते हैं। क्योंकि ज्ञेय का प्रतिबिम्ब जब झलकता है,** देखो! ज्ञेय ज्ञान में आता नहीं है ! आहाहा!

यह दर्पण है उसमें दर्पणमें ज्ञेय आता नहीं है। ज्ञेय उसमें झलकता है। ज्ञेय भिन्न है और दर्पण भिन्न है इस तरह, **क्योंकि ज्ञेय का प्रतिबिम्ब जब झलकता है,** प्रतिभासित होता है, **तब ज्ञान में वैसा ही अनुभव होता है।** जैसा झलकता है वैसा ही अनुभव होता है।**तथापि,** आहाहा! **उसे ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है।** अब ज्ञेय झलकता है तब ज्ञेय जानने में आता है कि ज्ञान जानने में आता है?

मुमुक्षुः- ज्ञान जानने में आता है।

उत्तरः- ज्ञेय जानने में आता है तो ज्ञेयकृत अशुद्धता और ज्ञान जानने में आता है तो ज्ञेयकृत अशुद्धता लागू पड़ती नहीं है। सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु:- क्या जानने में आता है, उसके ऊपर तो आधार है।

उत्तर:- धीरे-धीरे देखो। इसमें क्या कहा? कि ज्ञेय का प्रतिभास होता है और उस वक्त ऐसा भी अनुभव होता है। **तथापि उसे ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है।** यानि कि जो जानने में आता है उसमें अहं नहीं होता। और ज्ञेय जानने में आता है इसलिये ज्ञान प्रकट होता है, ऐसा भी नहीं है। ज्ञेय भिन्न है और ज्ञान भिन्न है। **तथापि**, क्रोध ज्ञात होने से आत्मा क्रोधी नहीं होता। क्रोध का प्रतिभास हुआ तो कहीं ज्ञान क्रोधरूप नहीं होता। दर्पण में अग्नि का प्रतिभास हुआ तो दर्पण क्या गरम हो गया? होता नहीं है। इस तरह, **तथापि उसे ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है।** दुःख जानने में आये तो आत्मा दुःखी हो जाता है? आहाहा! दुःख भिन्न है और ज्ञान भिन्न है। **तथापि उसे ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है।** अर्थात् ज्ञेय कर्ता हो और ज्ञान यहाँ कर्म हो ऐसा ज्ञेय और ज्ञान के कर्ता-कर्म संबंध का अभाव है। और निमित्त-नैमित्तिक संबंध को गौण करके ज्ञान जानने में आ जाता है।

फिर से, ज्ञेय ज्ञान में प्रतिभासित होता है तो भी ज्ञेयकृत अशुद्धता उसको लागू पड़ती नहीं है। क्योंकि वह ज्ञेयाश्रित ज्ञान नहीं है। वह ज्ञान तो आत्माश्रित है। जो ज्ञेय प्रतिभासित होता है तो ज्ञेय कर्ता और यहाँ ज्ञान कर्म हुआ, क्रोध का कर्म ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं है। अब जो प्रतिभासित होता है इसलिये वो ज्ञेय कर्ता और ज्ञान कर्म ऐसा नहीं है। मात्र ज्ञेय जानने में आता है उसको निमित्त कहते हैं और उस ज्ञेयाकार ज्ञान की पर्याय को नैमित्तिक कहते हैं। समझ में आया?

अब यदि ज्ञेय सापेक्ष ज्ञान, ज्ञेयाकार ज्ञान जानने में आता है तो सामान्य का तिरोभाव होता है। इसलिये ज्ञेय और ज्ञान का निमित्त-नैमित्तिक संबंध गौण करके अकेला ज्ञान, ज्ञेय से निरपेक्ष जानने में आता है। कर्ता-कर्म संबंध नहीं है और निमित्त-नैमित्तिक संबंध से देखो तो ज्ञान की पर्याय नैमित्तिक जानने में आती है किन्तु स्वाभाविक ज्ञान की पर्याय प्रकट नहीं होती। अब जब ज्ञेय प्रतिभासित होते हैं तब यह खुलासा है, इसमें ही खुलासा है। बहुत अच्छा किया है। देखो! इसमें ही लेते हैं। **तथापि उसे ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है, क्योंकि जैसा ज्ञेय ज्ञान में प्रतिभासित हुआ,** जैसा ज्ञेय, क्रोध, **ज्ञान में प्रतिभासित हुआ,** प्रतिभासित तो होता है। स्वच्छता है ना ज्ञान की, इसलिये ज्ञात होता है उसमें। **हुआ वैसा ज्ञायक का ही अनुभव करने पर ज्ञायक ही है।** उसमें ज्ञेय का अनुभव नहीं है और ज्ञेयाकार ज्ञान का अनुभव नहीं है अपितु ज्ञायक का अनुभव है।

ज्ञेय, ज्ञान में जानने में आते हैं? कि हाँ! ज्ञेय जानने में आते हैं? कि ना! ज्ञेय संबंधी का ज्ञान जानने में आता है? कि हाँ! या ज्ञेय संबंधी का ज्ञान ही जानने में आता है या दूसरा जानने में आता है? कि ज्ञेय संबंधी ज्ञान जानने में नहीं आता, ज्ञायक जानने में आता है। तो निमित्त-नैमित्तिक संबंध पूरा गौण हो जाता है। ज्ञेय सापेक्ष जो ज्ञान की पर्याय दिखती थी, आहाहा! उस ज्ञान की पर्याय में जब ज्ञायक जानने में आता है तो ज्ञेय सापेक्ष ज्ञान जानने में नहीं आता।

मुमुक्षु:- उत्पन्न ही नहीं होता फिर जानने में कहाँ से आये?

उत्तर:- जानने में कहाँ से आये!

मुमुक्षु:- जाननहार जानने में आता है।

उत्तर:- ज्ञायक जानने में आता है। ज्ञेय का लक्ष छूटा। ज्ञेय के संबंधवाली ज्ञेयाकार ज्ञान की

पर्याय का लक्ष्य छूटा और ज्ञान में ज्ञायक जानने में आता है तो अभेद अनुभव होता है। इसमें लिखा हुआ है सब, देखो! इसमें ही है। **जैसा ज्ञेय ज्ञान में प्रतिभासित हुआ वैसा ज्ञायक का ही अनुभव करने पर ज्ञायक ही है।** जिस तरह काँकरोली का तालाब, काँकरोली का प्रसिद्ध है, पानी स्वच्छ बहुत, एकदम स्वच्छ। उदयपुर से श्रीनाथजी जाते हुए रस्ते में आता है। एक बार हम उदयपुर गये थे, उसे देखने गये मगनलाल सुंदरजी और सभी इकट्ठे। उस तालाब पर पहाड़ के ऊपर बैठे थे। समझ गये?

अब तीन लोग पहाड़ के ऊपर बैठे थे और चौथा भाई आया। कि भाई! पहले भाई को पूछा कि यह तुमको क्या जानने में आता है इसमें? कि पेड़ जानने में आता है। क्योंकि पेड़ ऊपर सब थे, फूल सहित के। कि पेड़ जानने में आता है। दूसरे को पूछा, तुमको क्या जानने में आता है ? कि मुझे अकेला पेड़ जानने में नहीं आता अपितु पानी की स्वच्छ अवस्था और पेड़, इस तरह दोनों जानने में आते हैं। तीसरे को पूछा, तुम क्या देखते हो? कि पेड़ भी जानने में नहीं आता और पेड़ का जिसमें प्रतिभास होता है, ऐसी स्वच्छता भी जानने में नहीं आती। किन्तु स्वच्छ(ता) का दल पानी, पानी और पानी जानने में आता है। दोनों गौण हो गये। निमित्त गौण हो गया, नैमित्तिक पर्याय गौण हो गयी, और स्वभाव के ऊपर गया। आहाहा!

मुमुक्षु:- अकेले स्वभाव के ऊपर।

उत्तर:- अकेला स्वभाव त्रिकाली। दल, दल, दल जानने में आता है, आहाहा!

मुमुक्षु:- ज्ञेय का ज्ञान जानने में आता है ऐसा कहने से तो सामान्य का तिरोभाव...

उत्तर:- हो जाता है। ज्ञेय तो जानने में नहीं आता किन्तु ज्ञेय संबंधी का ज्ञान जानने में आता है तो ज्ञायक जानने में नहीं आएगा। बस! एक जाननहार जानने में आता है, दूसरा कुछ जानने में नहीं आता।

मुमुक्षु:- भाई ! नैमित्तिक अवस्था के ऊपर ध्यान जाये तो निमित्त के ऊपर फिसल जाता है।

उत्तर:- निमित्त ही।

मुमुक्षु:- निमित्त के ऊपर फिसल जाता है।

उत्तर:- निमित्त ही है, दूसरा क्या है उसमें? उपादान नहीं आया।

मुमुक्षु:- वह उपादान स्वभाव के ऊपर नहीं जा सकता।

उत्तर:- **ज्ञेय,** इसमें लिखा है। **ज्ञेय ज्ञान में प्रतिभासित** तो **हुआ,** किन्तु अनुभव किसका हुआ? ज्ञेय का हुआ या ज्ञेय संबंधी ज्ञान की पर्याय का हुआ? कि **वैसा ज्ञायक का ही अनुभव करने पर ज्ञायक ही है।** ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप से ज्ञात होता है, ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप से ज्ञात होता है। ज्ञेयरूप भी नहीं और ज्ञेय संबंधी ज्ञान की अवस्थारूप भी नहीं किन्तु ज्ञायकरूप से ज्ञात होता है आत्मा, जाननहाररूप से। ऐसा ही कहते हैं कि, भाई! यह पेड़ जानने में आता है इसमें क्या दिक्कत है? वो पेड़ और पानी दोनों जानने में आते हैं, आहाहा! अकेला पानी नहीं आया दृष्टि में। पर्यायदृष्टि रह गई, स्वपरप्रकाशक के नाम पर।

ज्ञेय ज्ञान में प्रतिभासित हुआ वैसा ज्ञायक का ही अनुभव करने पर ज्ञायक ही है।

जाननहार, जाननहार जानने में आता है। आहाहा! ज्ञेय जानने में नहीं आता। ज्ञेय के सन्मुख हुई ज्ञान की पर्याय जानने में नहीं आती । किन्तु अकेला ज्ञायक जाननहार जानने में आता है। जहाँ जाननहार जानने में आता है वहाँ अनुभव होता है। यह ज्ञेय जानने में आता है तब तक अनुभव नहीं होता। यह शास्त्र जानने में आता है तब तक अनुभव नहीं होगा। भगवान की प्रतिमा जानने में आती है तब तक अनुभव नहीं होगा। वह प्रतिभास को प्रसिद्ध करनेवाला ज्ञान जानने में आता है तो भी अनुभव नहीं होगा।

प्रतिमा के सामने खड़े होकर देख कि प्रतिमा जानने में आ रही है, ज्ञान जानने में आ रहा है या ज्ञायक जानने में आ रहा है ? प्रतिमा जानने में आ रही है तो भी आत्मा का अनुभव नहीं होगा और ज्ञान जानने में आ रहा है तो भी आत्मा का अनुभव नहीं होगा। क्योंकि उसको प्रसिद्ध करनेवाला ज्ञान तो इन्द्रियज्ञान है। इन दोनों का निषेध करे तो जाननहार जानने में आ जाता है। वहाँ खड़े-खड़े सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! भगवान के दर्शन हो जाते हैं, निश्चय स्तुति होती है। व्यवहार स्तुति का व्यय, निश्चय स्तुति का उत्पाद, यह वाक्य बहुत अच्छा लिखा है। **जैसा ज्ञेय ज्ञान में प्रतिभासित हुआ वैसा ज्ञायक का ही अनुभव करने पर ज्ञायक ही है।** उसी समय ज्ञेय का अनुभव नहीं है और ज्ञेय संबंधी ज्ञान की पर्याय का भी अनुभव नहीं है, परन्तु ज्ञायक वो मैं हूँ ऐसा आता है। आहाहा!

मुमुक्षु: ज्ञान पलट गया। रीबाउंड (rebound) हो गया, प्रभु !

उत्तर:- **'यह जो मैं जाननेवाला हूँ सो मैं ही हूँ,' 'यह जो मैं जाननेवाला हूँ'**, आहाहा! जाननेवाला हूँ। किसका जाननेवाला नहीं।

मुमुक्षु:- यह मैं जाननेवाला हूँ।

उत्तर:- **'यह मैं जाननेवाला'** इसका जाननेवाला नहीं और जाननेवाले का जाननेवाला भी नहीं! मैं तो जाननेवाला हूँ। जाननेवाले को जानूँ तो स्व-स्वामी संबंध का व्यवहार हो जायेगा और इसको जानूँ तो अज्ञान होगा। मैं तो **'यह जो मैं जाननेवाला हूँ सो मैं ही हूँ'** आहाहा! मैं ही हूँ। **'सो मैं ही हूँ, अन्य कोई नहीं'** इनटु कोमा (into comma) किया है। इम्पॉर्टन्ट (important) है, कहते हैं। **'यह जो मैं जाननेवाला हूँ सो मैं ही हूँ,'** आहाहा! इनटु कोमा है, देखो! **'अन्य कोई नहीं'** कोमा पूरी। इनटु कोमा में मर्म है, माल है।

ऐसा अपने को अपना, ऐसा अपने को अपना अपने से **अभेदरूप अनुभव हुआ,** आहाहा! अभेदरूप अनुभव हुआ। **तब इस जाननेरूप क्रिया का कर्ता स्वयं ही है**, आहाहा! ये जाननेरूप जो क्रिया हुई उसका कर्ता स्वयं ही है। ज्ञेय से ज्ञान नहीं होता। ज्ञेय कर्ता और ज्ञान कर्म ऐसा नहीं है। **जाननेरूप क्रिया का कर्ता स्वयं ही है** क्योंकि कर्ता-कर्म की बात है ना? यहाँ कर्ता-कर्म की बात है। अकर्ता प्लस (+) कर्ता। **और जिसे जाना वह कर्म भी स्वयं ही है।** किसको जाना? पर्याय को या द्रव्य को? द्रव्य को, आहाहा! पर्याय को जाने तो पर्याय कर्म होती है। आत्मा को जाने तो आत्मा कर्म होता है .

कल रात को तुम गये उसके बाद थोड़ी देर लिया था। तुम्हारी उपस्थिति में ही वे सब विचार तो आये थे। आहाहा! क्रोध जानने में आता है तो क्रोध कर्म होता है, और ज्ञान की पर्याय जानने में आये तो

ज्ञान कर्म होता है, अर्थात् अज्ञान कर्म होता है। और ज्ञायक जानने में आता है तो ज्ञायक कर्म होता है, फिर भेद अपेक्षा से ज्ञान की पर्याय को कर्म कहा जाता है, अभेद ज्ञेय होने के बाद। पहले यदि ज्ञेय, ज्ञान की पर्याय जानने में आये तो अनुभव नहीं होता, आहाहा!

मुमुक्षुः- तो कर्ता-कर्म का अज्ञान है।

उत्तरः- अज्ञान है।

मुमुक्षुः- कर्ता-कर्म नहीं है।

उत्तरः- कर्ताबुद्धि हो जाती है उसमें। पर्यायदृष्टि हो जाती है। **ऐसा अपने को अपना अभेदरूप अनुभव हुआ तब इस जाननेरूप क्रिया का कर्ता स्वयं ही है और जिसे जाना वह कर्म (अर्थात् कार्य) भी स्वयं ही है। ऐसा एक ज्ञायकत्वमात्र स्वयं शुद्ध है।** आहाहा! द्रव्यदृष्टि से तो शुद्ध है किन्तु द्रव्यदृष्टि अभेद हुई इसलिये भी वो तो शुद्ध ही है। वह शुद्ध - वह त्रिकाल शुद्ध या क्षणिक शुद्ध? नहीं! वह शुद्ध ही है। त्रिकाल शुद्ध और क्षणिक शुद्ध के भेद मत करना। **एक ज्ञायकत्वमात्र स्वयं शुद्ध है। -- यह शुद्धनय का विषय है।** त्रिकाली द्रव्य तो शुद्धनय का विषय, लेकिन शुद्ध पर्याय अभेद हुई वो शुद्धनय का विषय है। शुद्धनय का विषय तो शुद्ध है। शुद्धनय तो शुद्ध है परन्तु दोनों को अभेद करो तो भी वह शुद्धनय है। आहाहा! **शुद्धनय का विषय है। अन्य जो परसंयोगजनित** पर्याय **भेद हैं वे सब भेदरूप अशुद्धद्रव्यार्थिकनय के विषय हैं।** रागादि। **अशुद्धद्रव्यार्थिकनय भी शुद्ध द्रव्य की दृष्टि में पर्यायार्थिक ही है, इसलिये व्यवहारनय ही है ऐसा आशय समझना चाहिए।** भेद किया तो व्यवहारनय का विषय हो गया। अभेद हुआ तो निश्चयनय का विषय हो गया, आहाहा!

निश्चयनय प्रकट हुआ तो निश्चयनय का विषय हुआ। निश्चयनय प्रकट न हो तो व्यवहारनय का विषय बन गया। निश्चयनय मतलब अभेद। आत्मा से एकाकार अनुभव हुआ उस काल में, नया ज्ञेय होता है अभेद वो। हो गया समय, लो। थकान लगती है। यह गाथा पूरी हो गई। भावार्थ भी पूरा हो गया। थोड़ा भावार्थ है बाकी। वो तो स्याद्वाद की शैली से थोड़ा, लोग एकांत में न खिंच जायें, इस प्रकार से स्याद्वाद से समझायेंगे, ज्ञानप्रधान। वरना मूल तो जो पाठ था उसका यह भावार्थ दो पैराग्राफ में पूरा हो गया। दोनों पैराग्राफ का, कुछ बाकी नहीं है। यह तो फिर अपनी तरफ से, पंडितजी यह अपनी तरफ से थोड़ा और लिखते हैं।

ॐ